अध्याय द्वितीय

कृष्णमूर्ति जी का जीवन परिचय

जे. कृष्णमूर्ति जी बीसवीं शताब्दी में विश्वभर में विख्यात हुए एक महान संत। अपने विलक्षण व्यक्तित्व के कारण सबके आदरणीय एक महामानव, उम्र के नब्बे वर्ष तक–यानी जीवन के अन्त तक वे बाल के जैसे निष्पाप, सरल, खुले और सहज रहे। उन्हें लगता बच्चों जैसे प्रौढ़ लोग भी सहज और निष्कपट होंगे तो दुनिया कितनी सुन्दर बनेगी। इन्हीं गुणों के कारण उनके जीवन में विश्व का रहस्य खुल गया और इसी वजह से वे केवल सारे मानवों के ही मित्र नहीं, बल्कि सभी प्राणियों, समूची सृष्टि के लिए वे अपने बने। लेकिन बालकों के तो खास हमदर्द रहे।

जिद्दू जे. कृष्णमूर्ति जी का जन्म दक्षिण भारत में आन्ध्र प्रदेश के मदनपल्ली गांव में हुआ। जिद्दू उनके कुल का नाम है। माँ संजीवम्मों श्रीकृष्ण की भक्त थीं इसलिए इसका नाम कृष्ण रखा गया। यह स्वाभाविक ही था। कृष्णा का जन्म 1895 ईश्वी सन् के मई महीने में हुआ। ग्यारह तारीख की मध्यरात्रि समाप्त हो गयी थी और 12 तारीख का प्रारम्भ हो रहा था, घनी रात्रि का अन्धकार मिटाकर प्रातः काल का प्रकाश फैलना चाहता था। माता संजीवम्मा को आश्चर्य लगा कि बच्चों के जन्म के समय जो तीव्र वेदना माताओं को सहनी पड़ती है उसका वक्त कहीं पता ही नहीं था। गर्भावस्था से ही माँ का मन श्री कृष्ण में ही अधिक लगा रहता था। उन्होंने बाद में अनेक निकटवर्ती लोगों को सुनाया कि अपने देवधर में जो श्रीकृष्ण का चित्र था उसमें उन्होंने सचमुच के कृष्ण–परामात्मा के एक से एक रूप–प्रत्यक्ष देखे। इसलिए मेरा आठवां बालक ईश्वर का ही रूप होगा, ऐसा उनका निश्चित विश्वास था। ऐसे विरले बेटे का 'कृष्ण' के सिवा दूसरा कोई नाम वे रख ही कैसे सकती थीं? इसलिए उनकी माता ने उनका नाम 'कृष्णा' ही रखी।

उ समय की रीति के अनुसार पिता नारायणय्याजी ने पुत्र की जन्मकुण्डली बनवायी ज्योतिषी ने ग्रह–नक्षत्रों की स्थिति देख ली और भविष्यवाणी की कि यह बालक एक महान व्यक्ति होगा। प्रारम्भ में अनेक बाधाओं का सामना उसे करना पड़ेगा, लेकिन उसकी महानता प्रकट हुई।

नारायणय्याजी का परिवार सुसंस्कृत तेलंगणा–ब्राह्मण का था। पिता, दादा, परदादा सारे धर्मप्राण को डिग्री प्राप्त थी और वे सरकारी महसूल खाने में एक असफर थे उनकी नौकरी के स्थान बदलते रहते थे। 1896 में वे कड़प्पा शहर में थे। वहाँ का मौसम छोटे कृष्णा के लिए एकदम विपरीत था। उसे मलेरिया का बुखार बार–बार आता। वह स्कूल जाने लायक हो गया फिर भी उसकी बीमारी उसका पीछा नहीं छोड़ती थी। कृष्णमूर्ति जी बचपन से बीमारी के कारण माँ के साथ ही अधिक समय रहते थे।

बालक कृष्ण की विशेषता

कृष्णमूर्ति जी बचपन से ही आम बच्चे से हट के थे। आपको किसी चीज का लालच नहीं था। आप बचपन से ही दानी स्वभाव के थे, विभिन्न उदाहरणों से आपकी विशेषता प्रकट होती है। जैसे– बालक को मिठाई खूब प्रिय होती है न? लेकिन छोटे कृष्णा को मिठाई का लोभ तनिक भी नहीं था। माँ ने कुछ खास चीज बना कर सभी बच्चों को दे दिया, तो कृष्णा अपने हिस्से की चीज सब में बाँट देते, बहुत थोड़ी सी अपने लिए रखते। दूसरे बच्चों से मैं अधिक पाऊँ, उनसे मैं अलग हूँ, मेरी अपनी खुशी ज्यादा महत्व की है–ऐसा कोई भाव कृष्णा के मन में कभी उठा नहीं।

एक बार दरवाजे पर हमेशा कोई न कोई भिक्षा मांगने आता। माँ कृष्णा के ही हाथों भिक्षान्त परोसती, कभी अनाज दिलवाती। अनेक लोग आते तो कृष्णा पहले व्यक्ति को ही देकर पूरा बर्तन खाल कर देता और फिर से माँ के पास दौड़ जाता बर्तन भर लेने के लिए। माँ मुस्कुराती और उसके हाथ का बर्तन फिर भर देती। सबकुछ दे डालने में कृष्णा को जो खुशी बचपन में होती थी, वह प्रौढ़ होने पर भी कम नहीं हो सकी।

कृष्णमूर्ति जी बचपन से ही टेक्निकल बुि(के थे। इस घटना से स्पष्ट होता है कि एक दिन माँ ने भोजन के समय कृष्णा को ढूंढा! कहाँ था वह? घर के एक कोने में कृष्णा ने घड़ी खोल रखी थी। खड़ी की एक–एक चक्र, काँटे, स्प्रिंग अलग–अलग फैला दिये थे उसने। घड़ी के भीतर वे सब मिलाकर कैसा काम करते हैं, यह खुद ही समझने की कोशिश कर रहे थे। माँ दंग रह गयी। कहाँ से सीखा था, उसने यह सब? किसने उन्हें समझा दी थी घड़ी की अन्दरुनी रचना? किसी ने नहीं। माँ तू चिन्ता मर कर मैं फिर से घड़ी को पहले जैसा ही बना दूंगा। फिर वह टिक–टिक करने लगेगी, देखना! छोटे कृष्णा ने माँ को आश्वस्त किया और जब तक घड़ी पहले जैसी दुरुस्त नहीं बना दी तब तक वह खाना खाने उठा ही नहीं। यंत्रों के साथ कृष्णा की दोस्ती प्रौढ़ कृष्णमूर्ति में आखिर तक बरकरार रही।

बचपन में कृष्णा का अधिकतर समय अपने छोटे भाई के साथ बीतता था। कृष्णा का छोटा भाई नित्यानन्द उनसे तीन साल छोटा था दूसरे बड़े भाई और मित्र को स्कूल जाते हुए देखकर नित्या उसके पीछे भागता हुआ जाता, उसे बोलना भी नहीं आता था तब। कृष्णा को बीमारी के कारण स्कूल भाता नहीं था, लेकिन इससे वह अधिक महत्व का कारण था कि उसे बन्द कमरे में चहारदीवारी की इतनी सी जगह में पढ़ने की कल्पना ही पसंद नहीं थी। खुले में पेड़–पौधों के बीच दौड़ जाने को उनका मन होता। पंक्षियों का चहचहाना उसे आकृष्ट करता और अन्यमनस्क होकर वह खिड़की से बाहर देखने लगता। स्कूल के मास्टर उसके मन की यह विचित्र अवस्था समझ नहीं पाते थे। उन्हें लगता कृष्णा की दृष्टि से मन्दबुि(है और फिर कृष्णा को स्कूल के लिए किताबी पढ़ाई के लिए कैसे हो सकता था प्रेम, जब मास्ट की छड़ी पीठ पर सट्–सट् बजने लगती थी? प्रकृति का खुला विश्व कृष्णमूर्ति जी को जितना प्रिय लगता था, उतनी ही अच्छी लगती दोस्तों की, भाईयों की संगति। अपने आसपास कोई दुःखी हो, गरीब हो, बेचारा हो, तो कृष्णा का दिल पिघल जाता। इस प्यार का उसके हृदय में इतना ज्वार आता कि अपना हाथ बुखार में

तपते किसी के हाथ पर रखता और शीघ्र ही उसका उतर जाता। माँ कहती कृष्णा के हाथ का स्पर्श दवा का काम करता है। शरीर और मन की बीमारियाँ दूर करने की सि(कृष्णा में जन्मजात थी और यह भी आखिर तक रही। इस सि(के पीछे उसका सबके लिए करुणा से लबालब होकर उमड़ने वाला हृदय ही था।

कृष्णमूर्ति जी ने बचपन में ही समझ लिये थे कि इन्द्रियों का उपयोग करके जितनी और जैसी दुनिया दिखती है उससे वह अदृश्य रूप में, सूक्ष्म रूप में बहुत अधिक फैली है। दुनिया सचमुच बहुत अद्भुत है और हम मनुष्य, जो दुनिया का ही एक हिस्सा है, खुद भी कम अद्भूत और विलक्षण नहीं। पिताजी जब नौकरी के कारण कादिरी गांव में थे, तब कृष्णा की उम्र छः साल की थी इसी गांव में कृष्णा के जनेऊ या व्रत बंध संस्कार किया गया। हिन्दुओं में ब्राह्मण कुल में जन्में लड़कों का यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कार का हेतु रहता आया कि विद्याध्ययन करने की शुरुआत तब होती है, जब बालक घर, माता–पिता से चिपकर न बैठे, ज्ञान प्राप्त करने, सत्य की खोज करने, उसे मोहमाया से मुक्त होकर घर से दूर होने की तैयारी करनी चाहिए। परम्परा ने कृष्णमूर्ति जी की जनेऊ पहनाकर ब्राह्मण की दीक्षा दी गयी। सर्वव्याप्त जीवन–सत्य को खोजने की प्रेरणा, उसके हृदय में जागृत कर दी गयी। आगे चलकर कृष्णमूर्ति जी ने सारे मानव–जगत को यह समझा दिया कि केवल ब्राह्मण ही नहीं, सभी मानवों को, धर्म–जाति, देश, स्त्री–पुरुष के सारे भेद भूलाकर, जीवन की विराट् सूक्ष्म सच्चाई समझ लेनी चाहिए। हर एक का यह जन्मसि(अधिकार है और कर्तव्य भी इस जीवन–सत्य को समझे बिना, अपने जीवन में उसे प्रत्यक्ष जीये बिना मनुष्य की मनुष्यता, मानवता विकसित नहीं हो सकती। यह अधिकार पाने के लिए किसी धार्मिक विधि–विधान की आवश्यकता नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में या घर में यदि खुला, प्रसन्न प्रेमपूर्वक वातावरण होगा तो हर एक स्वस्थ बालक में यह सत्य समझने की इच्छा अंकुरित हो सकती है, ऐसा कृष्णमूर्ति जी का मानना था।

कृष्णमूर्ति अब दस वर्ष के हो गये और अचानक एक दिन उनकी माँ सजीवम्मा का देहान्त हो गया। दस बच्चों को उन्होंने जन्म दिया था–उनमें से पांच छः तो उनके रहते–रहते ही मृत्यु के ग्रास बन चुके थे। अत्यन्त दिलेर थीं वे कितने आघात सहे थे उन्होंने, फिर भी कितने प्रेम से परिवार को सम्हालती आयी थीं वे और अब उनके जाने से बच्चों का तो घर ही उजड़ गया। कृष्णा का मन दुःखी हो गया, छोटा नित्या उन्हीं से चिपक गया। बड़े भैया तो स्कूल–कॉलेज की पढ़ाई में आगे बढ़े। कृष्ण और नित्या की जोड़ी साथ–साथ रहने लगी, अत्यन्त प्रेमपूर्वक श्री नारायणयाजी की नौकरी भी कुछ समय बाद समाप्त हुई। बच्चों को सम्हालने के लिए उन्होंने अपनी एक विधवा बहन को बुला लिया। फिर भी माँ की बराबरी दूसरी कोई भी स्त्री कैसे कर सकती थी? माँ के जाने से कृष्णमूर्ति जी बहुत अधिक दुःखी थे। वे बहुत शान्त रहने लगे थे। वे अपने माँ को बहुत याद करते थे।

कृष्णमूर्ति जी को कभी–कभी माँ का सूक्ष्म शरीर दिखायी पड़ता। घर से निकलते समय वे दरवाजे तक उसे छोड़ने आयीं, ऐसा उसे आभास होता। एक बार उसने माँ की सूक्ष्म आकृति घर में देखी तो वह उसके पछे भागने गये। सीढ़ी पर माँ चढ़ती गयी और कृष्णा के उसके निकट पहुँचने से पहले ही वह अदृश्य हो गयीं। कृष्णा को तब कैसी निराशा हुई। लेकिन बचपन में माँ की सुनायी रामायण–महाभारत की कहानियाँ उनके मन में उभर कर सामने आने लगीं, श्री कृष्ण के दर्शन उन्हें होने लगे। उस पौराणिक माहौल में वह अब रमने लगे।

कभी सब मित्रों और भाईयों के साथ मन्दिर की ओर शाम के समय वह जाते। दुबले–पतले शरीर के कृष्णमूर्ति जी लम्बे हाथ हिलाते बड़े–बड़े कदम बढ़ाते अब सबके आगे रेकरी पर चढ़ने लगते, तब बुआ दूर से उन्हें देखकर अभिभूत हो जातीं। वह धीर–गम्भीर और शान्त तो थे ही। बुआ ने उनका नाम प्यास से और आदरभाव से

'दोणाचारी' रखा। महाभारत के द्रोणाचार्य पाण्डवों के गुरु थे न? कृष्णमूर्ति वैसे ही कोई महान आचार्य होगा– यह भाव बुआ के मन में आता।

माँ के अवसान के बाद पिताजी, भाई लोग और बुआ के साथ कृष्णा की अडयार में रहने आया। मद्रास के निकट अडयार गांव है। उन दिनों अडयार में एक नया धर्म–विचार लेकर कुछ पाश्चात्य लोग रहने आये थे। यह नया विचार था थियोसोफी का। उसकी स्थापना 1875 में अमेरिका में हुई थी। अन्तन्त तेजस्वी और पुरुषार्थी रशियन महिला मादाम ब्लावत्सकी और अमेरिकी कर्नल ऑलकॉट ये दो व्यक्ति 'थियासोफिकल सोसाइटी' के संस्थापक थे। 1882 में इसका प्रमुख केन्द्र भारत स्थित अडयार में लाया गया। विश्व के सभी महान धर्मों की अच्छाई थियोसोफिकल के विचार में थो। सारे मानव एक है, धर्म के नाम पर मानव के बीच झगड़ा, द्वेष, लड़ाईयाँ नहीं होनी चाहिए, यह थियोसोफिकल सोसाइटी की सबसे बड़ी सर्वमान्य बात थी। पिता नारायणय्याजी सनातनी हिन्दू तो थे, लेकिन धर्म के क्षेत्र में नये विचारों का स्वागत करते थे। थियोसोफिकल के उदार विचार उन्हें बहुत पसन्द आये। वे नौकरी करते थे और कृष्णा का जन्म भी नहीं हुआ था, तभी से उन्हें थियोसोफिकल में रूचि थी अपने घर के देवधर में थियोसोफी की नयी अध्यक्षा डॉ0 ऐनीबेसेन्ट की तस्वीर दूसरे देवी–देवताओं के साथ पूजा के लिए रखी गयी थी और कृष्णा की माँ को भी डा0 बेसेंट के विषय में जानकारी थी वे कृष्णा को उनकी बातें बताया करती थीं।

जब पिताजी अडयार में रहने आये तब उनका नौकरी का काल पूरा हो चुका था। उन्हें थोड़ी पेंशन तो मिली थी, परन्तु कुछ काम करके पैसा कमाना भी आवश्यक था। थियोसोफी के कार्यालय में कोई काम मिले, यह उनकी इच्छा थी। कुछ समय बाद ऐसा ही हुआ। वे थियोसोफी के आहाते में ही बच्चों सहित रहने आये। पास में अडयार नहीं बंगाल के उपसागर से मिलती थी। कृष्णमूर्ति जी का जीवन प्रवाह भी, अब विशाल सागर का रूप धारण करने जा रहा था।

पढ़ाई और विश्व गुरु बनने के लिए चुनाव छोटे–छोटे बच्चों के साथ कृष्णा मैलापुर के स्कूल में तीन मील पैदल चलकर पढ़ने जाने लगा। थककर चूर हो जाते थे, फिर भी शाम को नदी–सागर के संगम तट पर बच्चों के साथ नहाने जाना उन्हें बहुत भाता था। दक्षिण भारत में गर्मी बहुत होती हैं, और पसीना–पसीना होकर बालक तो क्या बड़े–बूढ़े भी नीले सागर–नदी के संगम पर नहाने में स्वर्ग–सुख का अनुभव करते थे। थियोसोफिकल सोसाइटी के कार्य करने वाले युवा वृ(सभी इन बच्चों के साथ नहाते थे, तैरते थे, थकान उतारते थे। ऐसी ही एक शाम थी वह। थियोसोफी के बुजुर्ग विचारक श्री लेडवीटर साहब नहाने गये थे। उन्होंने अन्य बच्चों के साथ कृष्णमूर्ति जी को देखा। उनसे किसी साथी ने कहा था कि इस बालक को वे गौर से देखें। उसे देखते ही वे समझ गये कि इस बालक में कोई खास बात है। उसकी ओर वे बार–बार देखने लगे, वहाँ पर तो उन्होंने कुछ नहीं कहा, लेकिन अपने निवास पर लौटते ही अपने युवा साथी श्री अर्नेष्ट बुट से कहा ''वह नारायणप्पा जी का लड़का अद्‌भुत है। उसके चेहरे के चारों ओर कैसी निर्मल सुन्दर आभा है। स्पष्ट भी है कि उसमें तनिक भी स्वार्थ भावना नहीं है।'' सर्वसामान्य लोगों को तो कृष्णमूर्ति जी में कोई खास बात दिखती नहीं थी इसके बदले उल्टा ऐसा ही लगता था कि मन्द बु(है बेचारा। इसलिए इन बच्चों को अपने पास बुलाकर पढ़ाने वाले वुड साहब को लेडबीटर साहब की बात सुनकर आश्चर्य लगा। लेडबीटरजी ने वुड से कहा : ''देखना, यह लड़का आगे चलकर बहुत महान आध्यात्मिक विभूति होगा।'' वुड ने चकित होकर पूछा ''कितना महान? डॉ0 बेसेण्ट जितना?' लेडबीटर जी का उद्‌गार था, ''उनसे भी महान।'' थिओसोफी के विचार में और एक महत्वपूर्ण बात की मान्यता थी। आध्यात्मिक दृष्टि से मानव–जाति की उन्नति हो इसलिए समय–समय पर धरती पर महान् विभूतियों सूक्ष्म या स्थूल रूपों में कार्य करती हैं। मानव–जगत में जब मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है तब ये मास्टर्स या महात्मा लोग सुयोग्य व्यक्ति को सहायता देकर विकसित करते हैं, उसको 'वाहन' के रूप में तैयार करते हैं। इन महात्माओं में मैत्रेय, बु(, कुथुमी इत्यादि

थे और अब डॉ0 बेसेण्ट और लेडबीटर को एक सुयोग्य बालक चुनकर विश्वगुरू का वाहन बनने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी सौपी गयी अर्थात् उस लेडबीटर और डॉ0 बेसेण्ट इसी दृष्टि से किसी युवा की खोज कर रहे थे, इतने में लेडबीटर जी की नजर कृष्णा पर पड़ी। इस युवा को देखकर अविभूत हुए।

उन्होंने नारायणय्याजी को बुलाकर बेटे को लाने के लिए कहा। खुशी से वे कृष्णा को उनके पास ले गये। लेडबीटर साहब में भी अतीन्द्रिय शक्तियाँ थीं ही उनके आधार पर वे कृष्णा के पूर्व–जन्मों को भी जान सके और कृष्णा ने पहली बार किसी अंग्रेज व्यक्ति को इतना अच्छा व्यवहार करते हुए देखा, इसलिए उन्हें भी आश्चर्य और आनन्द हुआ। अंग्रेज तो भारत में राज्य चलाने वाले थे, भारतीय मात्र गुलाम थे उनके, उनसे अंग्रेज बराबरी का, सम्मान का भाव कैसे रख सकते थे? कृष्णा के साथ के सारे बच्चे भी यही मानते थे। इसलिए लेडबीटर साहब ने कृष्णा को पढ़ाने की दृष्टि से बार–बार बुलाना शुरू किया। कृष्णमूर्ति जी के पिता जी भी राजी हो गये थे।

कृष्णमूर्ति जी के साथ अब उनके भाई नित्यानन्द भी जाने लगे इन अंग्रेज अध्यापकों के पास। वास्तव में नित्या को छोड़कर कृष्णमूर्ति जी कुछ भी करने को तैयार नहीं होते थे। खाना–पीना, पढ़ाई–लिखाई खेलना–कूदना सब साथ–साथ चलता था उनका, मानो शरीर दो प्राण एक थे, उनके लेडबीटरजी को जब पता चला कि स्कूल इतना दूर है, और कृष्णमूर्ति जी की रोज पिटायी होती है तब स्कूल की पूरी छुट्टी करके इन दोनों भाईयों की पढ़ाई थियोसोफिकल सोसाइटी के अपने बंगले पर ही कराने की व्यवस्था उन्होंने करवायी। अब केवल इतिहास, भूगोल, गणित, भाषा आदि जैसे स्कूल के विषय ही नहीं पढ़ाये जाते थे। नहाना–धोना, तैरना, घूमना खेलना, कपड़े कैसे पहचना इत्यादि सब कुछ इन अंग्रेज अध्यापकों के पास दोनों भाई सीखने लगे। स्कूल की छुट्टी होने से उनको अच्छा तो लगा, लेकिन यहाँ का शिक्षण कम सख्ती से नहीं हो रहा था। चौबीस घंटे निगरानी रहती थी। डॉ0 एनी बेसेन्ट इस समय अमेरिका में थी और भारत आने वाली थीं।

तब तक दोनों भाईयों की अंग्रेजी इतनी अच्छी हो जानी चाहिए कि उनके आने पर उनके साथ बातचीत करने की कुशलता इनमें आ जाय, यह जरूरी था।

डॉ0 एनी बेसेण्ट ने अडयार पहुँचकर कृष्णमूर्ति जी को देखा। वे खूब प्रसन्न हुई अंग्रेजी किस तरह पढ़ना, वे स्वयं ही सिखाने लगीं। लेकिन फिर उन्हें बनारस जाना पड़ा। कृष्णा और नित्या को बनारस ले जाने से पहले कृष्णा को मास्टर कुथुमी ने दीक्षा दी। इस दीक्षा के समय डॉ0 बेसेण्ट अडयार में नहीं थी। इस दीक्षा के समय डॉ0 बेसेण्ट अडयार में नहीं थी। लेडबीटर और कृष्णा स्थूल शरीर छोड़कर सूक्ष्म रूप में मास्टर्स से मिलने रात के समय जाते रहे इसका वर्णन कृष्णमूर्ति जी ने बनारस में डॉ0 एनी बेसेण्ट को लिख भेजा। कृष्णमूर्ति जी का सभी तरह से विकास हो रहा है यह देखकर डॉ0 बेसेण्ट दोनों भाईयों के आगे के शिक्षण का विचार करने लगी। ईश्वर के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए, मानव के विकास के जो जरूरी गुण– नित्यायता, सरलता, निर्लोभता विश्व गुरू बनने जा रहे युवा में होने आवश्यक थे वे कृष्णमूर्ति में पहले से ही मौजूद थे। मास्टर्स ने उसे स्वीकारा भी था। आवश्यकता थी अब सारे समाज के बड़े–बड़े लोगों के बीच निर्भीकता से, ज्ञान–विाान से परिपक्व होकर खड़े होने की। डॉ0 बेसेण्ट दोनों भाइयों को अपने अपने साथ बनारस ले गयीं और 1911 में इंग्लैण्ड भी दोनों साथ गये। लेकिन ऑवस्कोर्ड जैसे विदेशी यूनिवर्सिटी में शिक्षण प्राप्त करने में कृष्णमूर्ति जी के लिए दो प्रमुख अड़चने थी। एक अड़चन थी कि इंग्लैण्ड के अखबारों में यह वार्ता फैल चुकी थी कि भारत का एक नवयुवक विश्व–गुरु बनने जा रहा है बु(और ईसा के बाद अब यह नया 'मसीहा' आ रहा है, ऐसी प्रसि(होने से कृष्णमूर्ति जी को कई लोग मजाक करने लगे थे अखबार की प्रसि(से कृष्णमूर्ति जी को संकोच होने लगा था। अब कौन सी यूनीवर्सिटी भावी 'मसीहा' को डिग्री देने और अध्ययन करने के लिए प्रवेश देना चाहती। कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड में प्रवेश इसी वजह से नहीं मिल पाया।

एक दूसरा कारक भी था। पिता जी नारायणय्या जी को थिओसोफिकल के लिए प्रेम और आदर था। डॉ0 बेसेण्ट के लिए पूज्य भावना थी इसलिए प्रारम्भ में दोनों बेटों की पढ़ाई ही नहीं, उनका जीवन भी उन्होंने डॉ0 बेसेण्ट के हाथों में सौंप दिया था लेकिन जैसे–जैसे कृष्णा नित्या घर से परम्पराओं से दूर होने लगे, वे पूरी तरह अंग्रेज बनेंगे, ऐसी आशंका पिता के मन में उभरने लगी बेरो पर कुसंस्कार हावी हो जायेंगे, ऐसा भय उनके मित्रों ने भी पैदा किया। तब कोर्ट मैं केस करके उन्होंने बेटों की वापसी का प्रयत्न किया। कोर्ट ने प्रारम्भ में उनकी बात मान ली। लेकिन इंग्लैण्ड की प्रीवी कौंन्सिल में डॉ0 बेसेण्ट ने अर्जी दी। अब कृष्णा अठारह वर्ष का हो चुका था, स्वयं निर्णय कर सकता था। जिनके जीवन का क्षितिज एक बार विस्तृत हो गया वे युवक क्याा फिर से पुराने पिजड़ों में वापस आना चाहते? विदेश जाकर ज्ञान–विज्ञान का, आधुनिक संस्कृति का और अपने सर्वांगीण विकास की सम्भावना थी।

बालक जे0 कृष्णमूर्ति की आध्यात्मिक यात्रा डॉ0 एनीबेसेण्ट के अगाध वात्सल्य प्रेम एवं लीडवीटर के आध्यात्मिक छापा के नीचे शुरू हुई।

जनवरी 11 में अडडार में जे0 कृष्णमूर्ति की अध्यक्षता में 'आर्डर आफ द ईस्ट' की स्थापना हुई। इस संगठन के सदस्य अपने को, साथ ही विश्व को 'जगतगुरू' के आगमन के लिए समर्पित थे। जे0 कृष्णमूर्ति को व्यक्तित्व रूप से शिक्षित करने तथा 'जगतगुरु' के रूप में प्रशिक्षित करने के लिए उन्हें और उनके छोटे भाई नित्यानन्द के साथ 1911 में इंग्लैण्ड भेद दिया गया। उन्हें हर प्रकार के प्रदूषित वातावरण से दूर रखकर यहाँ तक की उन्हें पूर्णरूपेण शाकाहारी आहार वगैरह की भी व्यवस्था करके पवित्रता की कसौटी पर कसा गया। जे0 कृष्णमूर्ति भविष्य में 'जगदगुरु' की भूमिका निभायेंगे–इसे ध्यान में रखकर दोनों भाईयों को व्यक्तिगत रूप में समुचित शिक्षा मुहैया की गयी जिसके लिए विशेष शिक्षकों की नियुक्ति की जाये। श्री सी0 जिनरास दास, श्री जार्ज अरूण्डेल, श्री लीडबीटर, श्रीमती एनीबेसेण्ट, लेडी एमिली ब्यूटथेन्स आदि शिक्षक शिक्षिका थे। शीतकाल सन् 1921

में लगभग 26 वर्ष की अवस्था में श्रीमती एनीबेसेन्ट उन्हें वापस अड्डार मद्रास ले आयी तथा उसी समय से सार्वजनिक वक्ता के रूप में जे0 कृष्णमूर्ति ने अपनी जीवनवृत्तिका का प्रचार–प्रसार शुरू किया। लेकिन कृष्णमूर्ति जी को अपने पिताजी से मिलने का समय नहीं मिला। पिताजीसे न ही इतने वर्षों में पत्र–व्यवहार हुआ था, नहीं कोई सम्पर्क।

अनेक वर्षों के बाद कृष्णमूर्ति जी के बड़े भाई डॉक्टर शिवरामजी की पत्नी शारदा ने यानी कृष्णमूर्ति जी की भाभी ने पिता–पुत्र की उस मिलन की बात बतायी थी। विदेश से लौटे अपने बेटों से मिलने के लिए पिताजी इतने उतावले हो गये थे कि उन्हें देखते ही उत्कृष्ट प्रेम के कारण वे रो पड़े। कृष्णा ने उनके हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाया उन्हें सात्वना दी। दोनों भाइयों ने भारतीय परम्परा का पालन करके पिता के चरणों पर मस्तक रखकर साष्टांग प्रणाम किया था। बेटों में भी इतनी उत्कटता और प्यार उमड़ा था कि पिताजी के कहने से भाभी ने जो खास रूचिकर कहने से भाभी ने खास रूचिकर बनाये थे, उन्हें छूना भी सम्भव नहीं हुआ केवल संतरा ही वे खा सके। अपने कार्य में कृष्णमूर्ति जी की जिम्मेदारी काफी बढ़ गयी थी। 1924 में पिता जी की मृत्यु हुई। परन्तु इस समय जो मिलना हुआ था वही अन्तिम मिलन रहा।

कृष्णमूर्ति जी को फिर यूरोप वापस लौटना हुआ। अब कृष्णमूर्ति जी एवं नित्यानन्द जी इंग्लैण्ड–फ्रांस के अलावा श्रीलंका आस्ट्रेलिया और अन्य देशों में भी सभा–सम्मेलनों के कार्य से जाते रहे थे। युवक–युवतियों, बुजुर्ग स्त्री–पुरूषों के मध्य उनके नेता, मार्गदर्शक के रूप में कृष्णमूर्ति को खूब प्रेम और श्र(ापूर्वक दृष्टि से देखा जाने लगा था। सभी की आँखों में उनके लिए अहोभाव छलकता था। डॉ0 बेसेण्ट और ऑस्ट्रेलिया में विशप बने लेडबीटर साहब उस पर खूश थे। मास्टर कुथुमी का मार्गदर्शन मिलता था, अन्य महात्माओं के आशीर्वाद उसे प्राप्त थे। सचमुच ही यह विश्व–गुरू का कार्य करेगा, ऐसा विश्वास थिओसोफी के और 'स्टर' के सभासदों में, खासकर विकसित प्रौढ़ों में दृढ़

हो रहा था। 1921 में पेरिस में हुए थियोसोफी के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में कृष्णा ने अपने उत्तम सभा–संचालन ने सभी को चकित कर दिया था।

कृष्णमूर्ति जी के छोटे भाई नित्या की तबीयत बिगड़ने लगी। 1920 में ही उसमें क्षयरोग के लक्षण दिखने लगे थे। तब 1922 में, अबोहवा बदलने के लिए सूखे मौसम से लाभ होगा, ऐसी सलाह मिलने पर कृष्णमूर्ति जी ने नित्या को लेकर कैलिफोर्निया के ओहाय ग्राम पहुंचे, उनके साथ मदद लिए थे अमेरिका के थिओसोफिकल सोसाइटी के सेक्रेटरी एक युवक शरी वैरिग्टन और एक अमेरिकन लड़की रोजोसिण्ड विल्यम्स। रोजेलिण्ड थिओसोफी के वातावरण में नयी थी। नित्या का स्वास्थ्य सुधारने के अनेक उपाय वहाँ हो रहे थे। परन्तु इसी बीच अगस्त में कृष्णमूर्ति को एक विलक्षण गुढ़ अनुभव में से गुजरना पड़ा। अध्यात्म के क्षेत्र में इसे बहुत महत्व का माना गया। एक दिन संध्या के समय कृष्णमूर्ति जी की पीठ में रीढ़ के पास का हिस्सा अचानक फूल गया। एक छोटे से गेंद जैसे इस फूले हुए हिस्से में अत्यन्त वेदना थी। तीन दिनों तक यह भयानक दर्द चलता रहा केवल दिन में कुछ समय, जब वेदना हल्की होती, कृष्णामूर्ति जी शान्त और स्वाभाविक हो जाते। तीसरे दिन शाम को वाशिंग्टन ने सुझाया कि ऑगन के पेप्पर–ट्री ;काली मिर्च का पेड़द्ध के नीचे शायद, कृष्णमूर्ति, जी को थोड़ी राहत मिलेगीं कृष्णमूर्ति जी वहाँ बैठकर मंत्रपाठ करने लगे। साथियों को तब ऐसा लगा कि कुछ महान आत्माएँ कृष्णमूर्ति जी से मिलने सूक्ष्म रूप में आयी है। कृष्णमूर्ति जी ने मानों समाधिस्थ ही थे। अत्यन्त आनन्द की अनुभूति उसे हो रही थी, यह स्पष्ट ही हुआ।

इस घटनाक्रम का वर्णन काफी दिन बाद नित्या और कृष्णमूर्ति जी ने पत्र लिखकर डॉ0 बेसेण्ट और लेडबीटर साहब को भेजा। कृष्णमूर्ति जी ने लिखते थे कि ''मैंने परमसुख का अनुभव किया, क्योंकि मैंने दर्शन किये। अब पहले जैसा कुछ भी नहीं रह पायेगा। जीवन के मूलस्रोत के झरने पर स्वच्छ और पवित्र जल मैंने आकण्ड पी लिया, अब कभी भी मैं प्यासा नहीं होऊँगा, मैंने प्रकाश देख लिया है, अब कभी धनान्धकार में रहना सम्भव

ही नहीं, दुख और दर्द की व्यथा मिटाने वाली करूणा का मैंने स्पर्श किया, यह मेरे लिए नहीं, बल्कि दुनिया के लिये, सत्य का उद्‌गम मेरे लिए साक्षात हो गया, मैंने महदानन्द के, शाश्वत सौन्दर्य के झरने पर प्राशन करके तृप्ति पायी। मैं ईश्वर के प्रेम से मतवाला हो गया हूँ।'' स्वाभाविक ही था कि ऐसी अनुभूति पाने पर कृष्णमूर्ति जी का सारा आन्तरबाह्य जीवन बदल गया। जीवन के साथ अब उन्हें इतनी एकरूपता महसूस होने लगी कि उन्होंने लिख दिया–'मुझे पहले पहल ऐसी असामान्य अनुभूति हुई। रास्ते में मरम्मत करने वाला एक आदमी वहाँ था, वह आदमी मैं स्वयं था, उसके हाथ में पकड़ी हुई गैती मैं ही था। जिस पत्थर को वह तोड़ रहा था, वह मेरा ही एक हिस्सा था, घास का नाजुक पत्ता प्रत्यक्ष मेरा प्राण था और उस आदमी की बगल मैं खड़ा वृक्ष भी मैं स्वयं था। मैं सभी चीजों में था अथवा यो कहूँ कि सारी चीजें मुझमें थीं, चेतन, अचेतन, वह पहाड़, वह रेंगटो कीड़ा और सारे जीवधारी भी।''

कृष्णमूर्ति जी के पीठ की रीढ़ में जो भयानक वेदना हुई वह केवल तीन दिन ही नहीं सहनी पड़ी, लगातार अनेक दिनों तक और बीच–बीच में जीवनभर यह वेदना होती रही। इस विलक्षण घटना को कृष्णा 'प्रासेस' यानी यह गुढ़ प्रक्रिया कहता था। मानो महान् आत्माओं ने कृष्णा के शरीर–मन बु(का, महान् आध्यात्मिक कार्य के लिए तैयार करते हुए, आपरेशन ही कर दिया। यह एक शोधन की यानी शु(िकरण की ही प्रक्रिया थी ऐसा कह सकते हैं, जो इस तरह की घटनाएँ हुई उनके वर्णन से, भारतीय मांग–शास्त्र में जिसे ;कुण्डालिनी–जागरणद्ध कहते हैं, वहीं अनुभूति थी, ऐसा अनेकों ने माना। सत्य की अनुभूति के लिए, समग्र जीवन एक है, ऐसा अनुभव पाने के लिए सत्य–शोधक का जीवन जब शु(, पवित्र निर्भय और पूर्ण निष्काम होने लगता है, तब वह 'कुण्डालिनी' जागृत होती है, और अतीन्द्रिय शक्तियों का संचालन होने लगता है, यह अनेक सन्तों का अनुभव है।

डॉ0 बेसेण्ट और लेडबीटर को यह वृत्तन्त जब मालूम हुआ, तब वे प्रसन्न हुए। मानव–जाति के दुःख, कथा, कष्ट, तू–तू मैं–मैं के झगड़े मिटे इस हेतु से जिस बच्चे को उन्होंने चुना, उस कृष्णामूर्ति का सब कुछ इस तरह असामान्य, अद्‌भूत और रहस्मय होना शायद जरूरी था।

कृष्णमूर्ति जी अब 1911 के बाद थिओसोफी और 'स्टर' के हजारों सभासदों में इतनी अपेक्षाएँ बढ़ गयी थीं और उनके लिए केवल सम्मान का ही नहीं, विश्व–गुरू के लिए स्वाभाविक अहोभाव भी इतना व्यापक हो गया था कि अनुकों ने उन्हें जमीन–जायदाद–यहाँ तक कि कौंसिल ऑफ एरदे जैसा किला भी भेंद कर दिया था। आध्यात्मिक ऊँचाई के साथ ये प्रलोभन आते ही हैं। ये परीक्षा लेने आते हैं। कृष्णमूर्ति के चित्त पर उन सब का कोई असर नहीं होता था वह पूर्ववत् सरल, निष्कपट, खुला, निरपेक्ष बने रहे। यह असमान्यता विशेष महत्व की थी।

कृष्णमूर्ति का स्वतंत्र व्यक्ति अब 1922 की 'प्रक्रिया' के बाद प्रकट होने लगा। जो स्वयं प्रज्ञा अब छिपी रही थी, वह सभा–सम्मेलनों में उसे भाषणों में व्यक्त होने लगी। हजारों अनुयायियों के नेता होने लगी। हजारों अनुयायियों के नेता होने से उन्हें अब जिम्मेदारी अधिक महसूस होने लगी। हजारों अनुयायियों के नेता होने से उन्हें अब जिम्मेदारी अधिक महसूस होने लगी। पहले से ही उनहें समारोहों में बाहरी तामझाम, चमकीले आडम्बर अप्रिय लगते थे। अपने अन्तरंग में अब सत्य की झाँकी पाने से वह आत्मविश्वास से उपदेश करने लगे। जीवन एक है, वही प्रियतम है, उसे ईश्वर, ब्रह्म या अल्लाह, लॉर्ड इत्यादि नाम देने की क्या जरूरत है? 'जीवन' शब्द ही क्यों न रहने दें? इससे धर्म के नाम से चलने वाले झगड़े समाप्त हो जायेंगे, ऐसा उन्हें लगता, और वह स्पष्ट शब्दों में कह भी देते। जीवन की एकता में उनका 'अहं' अब धुल गया था, उनकी शक्तियाँ अब उनकी नहीं रही, सारे विश्व की हो गयी थीं। सत्य दर्शन का उनका अनुभव, आनन्द अब कवितओं में भी व्यक्त होने लगा। अलमस्त प्रेमी का मार्गदर्शन का आवाहन को उसका काव्य और

गद्य–काव्य ;20 से 30द्ध के दशक में शब्द रूप लेकर प्रकट हुआ। कृष्णमूर्ति जी की कवितायें–

प्रियतम् से एकरूपता–

मेरा प्रियतम और मैं
एक है।...
उसी में है मेरा विश्वास
मेरा गौरव, वैभव,
क्योंकि उसमें,
सभी चीजों का अस्तित्व है,
और मैं सभी में हूँ।....
मेरा प्रियतम और मैं
एक रूप है।
जैसे एक ओसबिन्दु
सिन्धु में समा जाता है,
वैसे ही मैं,
मेरे प्रियतम के साथ
एक रूप हो गया हूँ।
... प्रियतम के हृदय की ओर
एक मात्र पथ है।
वह पथ गुजरता है
तुम में ही,
स्वयं तुम्हारे ही हृदय से
'उसकी कहानी तुम्हे

मैं सुनाऊँगा।

कृष्णमर्ति की एक और कविता जो उन्हें अपने बारे में लिखा है–

सभी हूँ मैं–

मैं हूँ नीला आसमान और काली घटा

.... मैं पर्वतों के मध्य वृक्ष हूँ ऊँचा, उठा,

और शान्त गली में डोलता हूँ बन तिनका का

बसन्त का कोमल पर्ण हूँ और पर्ण बहार का हरा–भरा।

मैं हूँ स्वयं,

और हूँ कालब(मानव,

त्याग भी हूँ और हूँ स्वामी भी गर्व से भरा!

मैं नाशवान और अविनाशी उभय हूँ।

मैं यह भी नहीं, ना वह भी,

.... ना स्वर्ग ना नरक,

मैं न ही गुरु का शिष्य।

.... ओ दोस्त,

मुझमें सब कुछ समाया है।

मैं पारदर्शी हूँ–निर्मल,

जैसा पर्वतीय झरना।

वसन्त के नूतन पर्ण जैसा हूँ सरल।

बहुत थोड़े मुझे जानते हैं।

वे सुखी है,

जो मुझसे मिलते हैं।

कृष्णमूर्ति जी का कहना था कि हर व्यक्ति में एकात्म जीवन के साक्षात्कार की सम्भावना छिपी रहती है और उसे स्वयं ही खोलकर प्रत्यक्ष करना होता है। थिओसोफी और 'स्यर' के बुजुर्ग और सभासद अनुयायियों में से कुछ लोगों को यह स्पष्टता अखरने लगी थी, इससे क्रमब(श्रेणी में खड़े 'गुरुओं' के सहायको का महत्व कम होने वाला था। लेकिन डॉ0 एनी बेसेन्ट इतनी नम्र और कृष्णमूर्ति की महानता से इतनी अभिभूत थीं कि वह स्वयं को उसकी शिष्या कहने लगी।

कृष्णमूर्ति जी के छोटे भाई नित्यानन्द की तबीयत अचानक बहुत खराब हो गयी। तेरह दिसम्बर 1925 को ओहाई में की मृत्यु से आप जगत से ठीक उसी तरह विरागी हो गये जैसे भगवद बु(ने मृतक, दुर्बल, कृष्णकाय एवं बीमारी को देखकर हुये थे। अनुज की मृत्यु से दुखित ही नहीं वरन् उन्होंने मानवता के दुःखदर्द को बड़ी गहराई से अनुभव किया। कहा भी गया है कि सत्य की खोजी को बड़ी से बड़ी कठिनाई आश्चर्यजनक अनुभूति से भर देता है और उसमें नूतन शक्ति का संचार करता है।

लगभग 1926 में कृष्णमूर्ति जी के अनुयायी जानकर बड़ी हैरत की उनके व्याख्यानों व बातों में विषयवस्तु का स्वरूप ही बदल गया है। डॉ0 एनी बेसेन्ट ने जिस ढाँचे की संचालनार्थ उन्हें हर प्रकार का परिवेश प्रदान किया, उसी ढाँचे को स्वयं कृष्णमूर्ति जी प्रहार करने लगे थे। साथ ही गुरु और सम्प्रदाय के विरोधी हो गये थे। संसार के अनेक भागों के अनगिनत लोग धीरे–धीरे उनके पास आने लगे थे। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि अधिसंख्य लोग उन्हें गुरु मानने लगे हैं जो कि एक नवीन बंधन है, सत्याअनवेषण में संगइन बाधक होता है, हालैण्ड में प्राप्त पांच हजार एकड़ भूमि 'ओमेन स्टार कैप'' में तीन अगस्त, 1929 को डॉ0 एनी बेसेण्ट व 3000 स्टार सदस्यों की उपस्थिति में 18 वर्षों पूर्व स्थापित 'आर्डर आफ द स्टार इन द ईस्ट' की आपमें भंग कर दिया जिससे हजारों–हजार लोग मर्माहत हुये। इस अवसर पर आपने कहा–

''मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूँ कि सत्य पंथहीन है और आप किसी भी मार्ग से किसी धर्म या पंथ से उसक निकट नहीं पहुंच सकते। कोई भी मेरा शिष्य नहीं कोई भी अन्य व्यक्ति आपको स्वतंत्र नहीं कर सकता। सर्वप्रथम यदि आप इस बात को समझ लेते हैं तो आप देख सकेंगे कि कोई भी विश्वास या मान्यता संगठित करना कितना असम्भव है। विश्वास एक अत्यन्त व्यक्तिगत चीज हे, उसको आप संगठित रूप नहीं दे सकते। यदि आप उसका संगठन करते हैं तो वह मृत हो बन जाता है, जो दूसरों पर लादा जाता है।

दुनिया में हर व्यक्ति सर्वत्र यही करने का प्रयास कर रहा है सत्य को संकुचित बनाया जाता है और जो कमजोरहै, केवल क्षणिक असंतोष महसूस करने वाले हैं, उनके लिए सत्य को एक खिलौना बना दिया जाता है। सत्य को नीचे नहीं उतारा जा सकता, व्यक्ति को ही वहाँ तक चढ़कर जाने का प्रयत्न करना होगा। आप पर्वत की चोटी को घाटी में नहीं ले आ सकते।

कृष्णमूर्ति जी का कहना था कि सत्य साक्षात्कार के लिए संगठन खड़ा करने से वह व्यक्ति के लिए संगठन खड़ा करने से वह व्यक्ति के लिए एक वैसाखी, एक बन्धन बनकर उसे कमजोर बना डालता है। 'बन्धन से मुक्त, उपाधिरहित समग्र सत्य को स्वयं खोज लेना हर व्यक्ति की अद्वितीयता है।'

अन्त में उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य प्रकट किया, 'नये पिजड़े बनाना या उनको श्रृंगारित करना मेरा काम नहीं हैं। मेरी एक मात्र आस्था है : मानवों को परिपूर्ण रूप से बन्धन–मुक्त, स्वतंत्र करना।''

इसके पश्चात कृष्णमूर्ति जी ने अपने कार्य के लिए दान में मिली जमीन–जायदाद दाताओं को वापस कर दी और 1930 में थिओसोफिकल सोसायटी का सभासदत्व भी उन्होंने छोड़ दिया। उन्होंने अपने अनुयायियों से उन्होंने कहा था ''मैं आपको कोई शरबत पिलाकर सत्य का साक्षात्कार करा दूँगा, ऐसा आप मानते हैं, लेकिन यह भ्रम है। ऐसा कभी नहीं होगा।'' परन्तु एक बात का अहसास उन्हें प्रारम्भ से अन्त तक नित्य रहा अपना

जीवन धरती के मानवों की आध्यात्मिक भूख जगाने के लिए हर एक को अपना 'मैं' मिटाने की प्रेरणा देने के लिए हैं, और इस दिशा में मार्गदर्शन देने के लिए हूँ।

बाद में कृष्णमूर्ति जी ने थियोसोफिकल सोसायटी व उसकी पूर्वाग्रहों सेसदा के लिए संबंध तोड़ दिया, सभी संगठनों की सदस्यता त्याग कर अकेले ही सत्य की खोज और मानवता का दुःखदर्द दूर करने निकल पड़े।

एक समाचार पत्र के संवाददाता ने जब कृष्णमूर्ति जी यह पूछा कि ''अब इसके बाद आप क्या करेंगे? आप कैसे जीवन–यापन करेंगे? अब आपके पास अनुयायी नहीं होंगे? लोग अब आपको सुनने नहीं आयेंगे? तो कृष्णमूर्ति ने इन प्रश्नों के जवाब में कहा–

''यदि सुनने वाले केवल पाँच ही लोग हों, जो सुनें और जियें तथा उनके चेहरे शाश्वत की ओर हों तो काफी है। ऐसे हजारों लोगों के होने का क्या फायदा यदि वे समझते ही न हों, यदि वे पहले से ही पूर्वाग्रह से चिपके हों, जो नये को न चाहते हों, वरन् जो अपने बंजर व जड़ अहं के मुताबिक ही नये का भी अर्थ लगालेतो हों।

सत्यानुभूति के साथ ही साथ प्रेम, करूणा व दया का जन्म होता है। ऐसा व्यक्ति ही लोगों को मुक्ति पद पर जाने की प्रेरणा दे सकता है और वही उसके जीवन का उद्देश्य होगा कृष्णमूर्ति जी कहते हैं–

''मेरा एक मात्र कार्य है लोगों को बिना शर्त पूर्णतः स्वतंत्र करना।''कृष्णमूर्ति जी के उपयुक्त कथन से यह बात स्पष्ट होती है कि वे मानव मात्र की सेवा सामने आकर नहीं वरन छिपकर अप्रत्यक्ष रूप से करना चाहते थे। वे गुरु रूप में नहीं वरन् मित्र और सच्चे सहयोगी के रूप में सत्य के अगाध प्रेम के खारित मानव–मात्र का पथ प्रदर्शन करने को उत्सुक थे।

जे0 कृष्णमूर्ति महान क्रान्तिदर्शी, जागरूक, विलक्षण, सत्यान्वेषी व्यक्तित्व के धनी थे। उनकी वाणी में उद्भुत आकर्षण, अपूर्व मधुरिमा व सरसता थी जिससे हर सुनने

वाला उनसे प्रभावितही नहीं होता था। वरन अपने आपको उनपर न्यौछावर करने को आतुर हो उठता था तथा उसके अन्दर एक क्रान्तिकारी नवीन आन्दोलन जाग उठता था। हर वर्ग जाति उम्र धर्म के लोग उनके प्रशान्ता और अगाध करूणा से आप ही आप खींचे चले आते थे। पीड़ायुक्त आहत मना व्यक्ति को स्वस्थ एवं उल्लासयुक्त कर देने में आपका कोई शानी नहीं था। अपनी भूमिका को स्पष्ट करते हुए कृष्णमूर्ति कहते हैं–

''आपके जीवन के लिए मैं एक दर्पण का कार्य कर रहा हूँ उसमें आप जैसे भी है स्वयं को देख सकते हैं और तब आप दर्पण को फेंक भी सकते हैं। दर्पण महत्वपूर्ण नहीं है।''

कृष्णमूर्ति जी 'आघातों धमक्कड़ जिज्ञासा प्रवृत्ति अदजीवन बनी रही यहाँ तक की वृ(ावस्था में भी आप एक स्थान पर नहीं रहते थे। व्यक्ति को बिना शर्त मुक्त करने की हिमाकत मरते दम तक करते रहे। वे सच्चे अर्थों में समस्त मानवजाति के शिक्षक थे। यथार्थ के धरातल पर खड़े होकर देखे तो जे0 कृष्णमूर्ति को जिन उद्देश्यों को लक्ष्य करके जगतगुरु की भूमिका सौपने व मानव–मात्र के उ(ार के लिए तैयार किया गया था निःसंदेह वे इस पर पूरी तरह खरे उतरे तथा एक सच्चे शिक्षक के रूप में उन्होंने अपनी भूमिका प्रस्तुत की।

नवम्बर 1985 में कृष्णमूर्ति अन्तिम बार भारत आये थे उसी समय उनकी मृत्यु का मान हो गया था ऐसा उनकी वार्ताओं से स्पष्ट है–हर व्यक्ति मरने वाला है शायद मैं भी। लोग हंसने लगे। मुझे पता है मैं करने जा रहा हूँ जैसा कि आप सभी जानते है। डॉक्टरों ने मुझे बताया कि मुझे कैंसर हो गया है आप पहली जनवरी तक जीवित नहीं रहेंगे। वैसे मैं पहली जनवरी तक मरने नहीं जा रहा हूँ संयोग वश जनवरी के अंत तक।

डॉक्टरों को झुठलाते हुए वे 17 फरवरी 1986 को लगभग 91 वर्ष की अवस्था में कैलिफोर्निया स्थित ओहाई घाटी के पाइन काटेज में निद्रावस्था में ही इस नश्वर शरीर

को त्याग दिया। कृष्णमूर्ति जी आज वहाँ नहीं हैं, किन्तु अपनी नवजीवन दृष्टि सामाजिक क्रान्तिदर्शिता, वैचारिकी तथा विलक्षण शैक्षिक दर्शन के कारण आज भी मानवता का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

कृष्णमूर्ति जी एक करुणावान व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति है। वे मनुष्य की सम्पूर्ण समस्याओं पर गम्भीरता से विचार करते हैं तथा लोगों को प्रेरित करते हैं कि वे अपनी समस्याओं के मूल तक जायें। समस्याओं को ऊपर से देखने पर उनका निदान नहीं खोजा जा सकता। वे वास्तविक अर्थों में मनुष्य का कल्याण करना चाहते हैं। मानवीय दुःखों की ओर इंगित करते हुए एक प्रश्नकर्ता ने कृष्णमूर्ति जी से पूछा कि आज लाखों लोग दुःख एवं दरिद्रता में जीवन यापन कर रहे है। उन्हें न तो भरपेट भोजन मिलता है न तो ठंडक में शरीर ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र ही उपलब्ध होते हैं। लोग अपने आपको जिन्दा रखने के लिए अमानवीय कृत्य करने को मजबूर है। ऐसी विषय परिस्थिति में आपका यह आध्यात्मिक भोजन कोई महत्व नहीं रखता। कृपया आप बतायें कि उन लाखों लोगों के लिए अमानवीय कृत्य करने को मजबूर है। ऐसी विषम परिस्थिति में आपका यह आध्यात्मिक भोजन महत्व नहीं रखता। कृपया आप बताय कि उन लाखों लोगों के लिए आपका क्या संदेश है? इस प्रश्न के उत्तर में जे. कृष्णमूर्ति जी कहते हैं 'अगर आप सड़क पर कोई दुर्घटना देखते हैं कि एक आदमी मोटर से कुचल दिया गया, तो क्या आप अपने को मोटर के आगे डालकर समस्या का निदान कर सकते हैं? यदि आपके घर में कोई बीमार हो तो क्या आप समस्या के हल के लिए स्वयं बीमार हो जाते हैं? नहीं, आप ऐसा नहीं करते। आप दुर्घटना को रोकने हेतु कानून बनाते है तथा लोगों को समझाने का प्रयास करते है कि लोग वास्तविकता समझे और सावधान हो जाये। आप डाक्टरी सहायता का उपयोग करते हैं ताकि वह व्यक्ति उतना ही स्वस्थ हो जाय जितना आप है। जब आप जीवन को इस दृष्टि से देखते हैं तो यह बिल्कुल भिन्न हो जाता है। कि चमत्कारित प्रभाव से लोगों

को एक दिन भोजन मिल जाने से उनकी समस्या नहीं हल होगी। हमें समस्या के भूत में जाना होगा, जिसके कारण ऐसी समस्या जन्म लेती है। समस्या का मूल यह है कि हमारी स्वार्थपरता, स्नेह का अभाव, क्रूरता आदि ने ही ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित की जा सकती है जो इन समस्याओं का स्थायी हल होगी। राहत के रूप में दी जाने वाली सहायता से स्वार्थपरता, क्रूरता, ईर्ष्या, जलन, हृदय की पीड़ा और मन की अशान्ति जैसी समस्याओं का भी समाधान नहीं होगा। मेरा सरोकार इसी बात से है क्योंकि यदि आप उसे हल कर लें तो आप अन्य सभी चीजों को हल कर लेंगे। जब आपकी भेंट एक अच्छे डाक्टर से होती है तो मात्र आपके एक लक्षण का इलाज नहीं करता, अपितु वह समस्या के मूल में जाकर सभी लक्षणों को दूर कर देने का उपाय करता है ताकि आप पूर्ण स्वस्थ हो जायें। मैं कहता हूँ कि मुक्ति और प्रगति ही एक मात्र ऐसी चीज हैं जिसका महत्व है। इस प्रकार कृष्णमूर्ति जी मानवमात्र का हृदय से कल्पना चाहते हैं व्यक्ति स्वयं अपनी समस्याओं से मुक्ति का मार्ग ढूढ़ लें।'

जे. कृष्णमूर्ति के व्यक्तित्व के बारे में विद्वानों के मत

जे. कृष्णमूर्ति के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करते हुए विख्यात विचारक रोहित मेहता का कहना है कि कृष्णमूर्ति जी वर्तमान समय में एक मौलिक एवं क्रान्तिकारी विचारक है। उन्होंने नवीन दर्शन का निर्माण किया। उनके दर्शन की एक विशिष्टता है, चुनाव रहित सजग चेतना। उनका कहना है कि 'जीवन की किसी समस्या को होशपूर्वक देखों और उससे मुक्त होओ। यह बोध कोई बौ(िक मामला नहीं है अपितु जब मन व हृदय के साथ अपने सम्पूर्ण अस्तित्व से हम किसी समस्या को देखते हैं तो यह देखना ही उस समस्या का निदान है। उनके दर्शन में आध्यात्मिक अध्ययन के लिए किसी विधि–विधान का कोई स्थान नहीं हैऋ उनका कहना है कि जो कुछ है। उसे देखो और उसे देखेने में ही सत्य शिवम् एवं सुन्दरम का उद्घाटन हो जाता है। जे. कृष्णमूर्ति जी बराबर कहा करते थे कि देखो देखने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। उनका मानना

है कि देखना स्वयं ही अपनी क्रिया को जन्म देता है मात्र ठीक अवधान होना चाहिए। वास्तविक देखना तो बिना द्रष्टा–दृश्य के भेद के होता है। वास्तव में जो हम देखते हैं, वह हमारे मन की उपज है और मन ही अपने को दृष्ट्रा एवं दृश्य में विभाजित कर लेता है। ठीक देखना वह है जहाँ न दृष्टा है और न दृश्य बल्कि शु(दर्शन है। देखते–देखते जब दृष्टा एवं दृश्य का भेद समाप्त हो जाता है तो शु(दर्शन ही रह जाता है वही सत्य है शिव है वही सुन्दर है।'

कृष्णमूर्ति के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए ओसो रजनीश का कहना है कि ''जे0 कृष्णमूर्ति तो एक सद्गुरु है उसी उसी कोटी में जहाँ महावीर, बु(,)ण और क्राइस्ट हैं। कृष्णमूर्ति एक जीवन्त जाग्रत प्रबु(पुरूष है कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति आग्रह नहीं करते कि ऐसा होना ही चाहिए कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति अगर किसी के सिर पर हाथ रखते हैं तो वे ये नहीं कहते हैं कि ऐसा होना चाहिए, वैसा नहीं होना चाहिए। वे तो सिर्फ यह कहते है जो शुीा हो वह हो जिनक`अस्तित्व के साथ–साथ तभी तो संघ गयी है। वे भी कहेंगे जो शुभ हो वहीं हो, अगर जीवन शुभ है तो जीना हो, यदि मृत्यु शुभ हो तो मृत्यु हो।''

अंग्रेजी के महान लेखक और चिन्तन ऑल्डस हक्सले ने ;1961द्ध में जे. कृष्णमूर्ति जी की वार्ता सुनने के बाद लिखा है कि अब तक जितनी भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण बातें मैने सुनी है, यह वार्ता उनमें अनन्यतम थी, यह ऐसा अनुभव था कि मानों हम स्वयं बु(को सुन रहे हों, ऐसी अद्भूत शक्ति ऐसा आन्तरिक अधिकार। 'प्रथम एवं अन्तिम मुक्ति' नामक पुस्तक के प्राक्कथन में ऑल्डस हक्सले कहते है, 'कृष्णमूर्ति जो कुछ हमे देते हैं उसका निश्चित स्वरूप क्या है? वह क्या है? जिसे हम चाहें तो कृष्णमूर्ति जी से ले तो सकते हैं, परन्तु संभावना इसी की अधिक है कि उसे हम न लेना ही पसंद करेंगे। कृष्णमूर्ति जो हमें देते हैं, वह न तो विश्वासों की कोई प्रणाली या रूढ़ सि(ान्तों की कोई सूची है, न बने बनाये विचारों एवं आदर्शों का कोई ढाँचा। वे न तो कोई नेतृत्व प्रदान करते है, न कोई मध्यस्थता और न कोई आध्यात्मिक निर्देशन। यही नहीं वे कोई अनुकरणीय

उदहरण भी हमारे लिए नहीं देते। वे जो कुछ हमें देते हैं उसमें न तो कोई क्रिया काण्ड है, न धार्मिक सम्प्रदाय न तो कोई व्यवहार का विधान है और न जीवन का उ(ार। उसमें कोई प्रेरणा देने वाली बहस भी नहीं है तो क्या वह कोई आत्मानुशासन भी हमारी समस्या के समाधान का मार्ग नहीं है। वह समाधान तभी सम्भव है जब हमारा मन यथार्थ के प्रति उन्मुख हो और बिना पूर्व एवं प्रतिबन्धों के बाह्य एवं अभ्यान्तर विश्वों में जो दिया हुआ है, उसका सामना करने को तैयार हो। यदि यह सत्य है कि पूर्ण स्वतंत्रता में ही ईश्वर की सेवा है। अनुशासित होने से मन में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होता, रहता वह पुराना ही है। हाँ बस नियंत्रण में बँधा जकड़ा रहता है।'

हक्सले पुनः लिखते हैं कि आत्म अनुशासन उन वस्तुओं की सूची में आता है, जिसे कृष्णमूर्ति हमें नहीं देते। तो क्या वे जो देते हैं उसे प्रार्थना कहा जा सकता है? पुनः उत्तर निषेधात्मक होगा। प्रार्थना आपको वही उत्तर दे सकती है जिसे आप खोज रहे हैं, परन्तु वह उत्तर तो उस अचेतन से या उस सामान्य स्रोत से आ सकता है जो आपकी समस्त तृष्णाओं को भण्डार है। वह उत्तर ईश्वर का निस्तब्ध स्वर तो नहीं होता। यथार्थ का स्वर तो स्वयं ही आपके पास आता है उससे निवेदन नहीं किया जा सकता, उससे प्रार्थना नहीं की जा सकती। पूजा तथा भजन के द्वारा पुष्पार्पण के द्वारा उसे प्रसन्न करके, अपना दमन करके या दूसरों का अनुकरण करके आप ऐसी किसी प्रलोभन के द्वारा उस छोटे से पिंजरे में कैद नहीं कर सकते। आप जो माँगते हैं, वह आपको मिलता तो है, परन्तु वह सत्य नहीं होता। प्रार्थना से हम योग पर आते हैं और योग भी उन्हीं वस्तुओं में से है जिसे कृष्णमूर्ति हमें नहीं देते। योग एकाग्रता है और एकाग्रता बहिष्कार है। किसी एक विचार को चुनकर उस पर एकाग्रचित होकर आप प्रतिरोध की दीवार खड़ी कर लेते है और इस प्रकार आप सभी दूसरे विचारों से बचते जिसे प्रायः ध्यान कहा जाता है वह प्रतिरोध का संव(ंन है, उसमें अपनी इच्छा के किसी विचार पर ऐकान्तिक रूप से एकाग्रचित्त हुआ जाता है। यह चुनाव सुख पर, पुरस्कार अथवा उपलब्धि पर आधारित होता है। यह

भी हो सकता है कि यह चुनाव व्यक्ति की प्रतिब(ता एवं परम्परा की प्रतिक्रिया हो जब आप एक विचार को चुनते है और दूसरे का निषेध करते हैं तो इस संघर्ष से प्रतिरोध, द्वन्द्व एवं कलह पैदा होता है। जिसमें आपकी सारी शक्तियाँ व्यय हो जाती हैं। दूसरी ओर यदि आप प्रत्येक विचार पर ध्यान दें तो बहिष्कार नहीं होता। यदि आप बिना अधिकार की भावना के, बिना औचित्य समर्थन के अवधान करें तो आप देखेंगे कि उस विचार को केवल देखने मात्र की प्रक्रिया से ही वहाँ दूसरा विचार प्रवेश नहीं करता। जहाँ गुण–दोष का निर्णय होता है, जहाँ तिरस्कार है, वहाँ मन से अन्तर्निरीक्षण करना हमारी सहायता नहीं करता। पक्ष अथवा विपक्ष से निर्णय लेने से तुलना करने से हम अनिवार्यतः दैत से प्रतिब(हो जाते है। केवल निःसंकल्प अवधान ही है जिसमें निर्णय नहीं होता, वहीं हमें द्वैत से प्रतिब(हो जाते है। केवल निःसंकल्प अवधान ही है, जिसमें निर्णय नहीं होता, वहीं हमें द्वैत से मुक्ति की अवस्था तक से जाता है। वास्तविक मुक्ति सर्जनशील यथार्थ की आन्तरिक स्वतंत्रता है। यह अक्षय कोष तभी उपलब्ध होता है, जब विचार अपने को वासना, दुर्भावना एवं अज्ञान से मुक्त कर लेता है, जब विचार अपने को संसारिकता से तथा कुछ बनने की वैयक्तिक लालसा से मुक्त कर लेता है। सम्यक् विचार तथा ध्यान से इसका अनुभव किया जा सकता है।

निःसंकोच आत्म अवधान हमें इस सर्जनशील यथार्थ तक ले जायेगा, जो हमारे तमाम मिथ्या विनाशकारी विश्वासों के पीछे दिया है, हमें उस शांत प्रज्ञा तक ले जाता है, जो तमाम अज्ञान के बाद भी ऐसे ज्ञान के बाद भी जो केवल प्रज्ञा के लिए वह सदा ही अवरोध का कार्य करता है, वह स्व को हमें प्रतिक्षण अनावृत्त नहीं करने देता। जो मन प्रज्ञा की शान्ति तक पहुँच गया है। वही सत् को जानेगा, वही जानेगा कि प्रेम करना किसे कहते हैं? प्रेम न तो व्यैक्तिक होता है, न अवैयक्तिक प्रेम की स्वयं अपनी चितरंजना है, वह यथार्थ है वह सर्वोपरि है, वह असीम है।

जे. कृष्णमूर्ति की साधन प(ति की चर्चा करते हुए ओशो रजनीश का कहना है कि जे. कृष्णूर्ति जिन्दगी भर समझाते रहे कि समस्त साधनाएँ भ्रम है। समस्त साधनाओं को भ्रम मान लिया जाय, समस्त उपायों को भ्रम मान लिया जाय, समस्त विधियों का भ्रम मान लिया जाय तो आदमी निर्विध और निरुपाय हो जाने में ही ध्यान फलित होता है, यह भी साधना की एक विधि है जिसे नकारात्मक विधि के रूप में मानते हैं दुनियाँ में दो प्रकार की विधियाँ रही है। नकारात्मक एवं सकारात्मक या विद्यालय विधियों को सीखना हो तो पंतजलि से सीखो, नकारात्मक को सीखना हो तो अष्टावक से सीखों, कृष्णमूर्ति जी से सीखो। जे. कृष्णमूर्ति आधुनिक अष्टावक है। लेकिन यह मत सोचने कि नकारात्मक विधि, विधि नहीं होती। यह भी एक विधि है यह भी एक विधि, सारी विधियों को छोड़ देना भी एक विधि है और यह आसान विधि नहीं है ख्याल रखना नकारात्मक विधि में धीरे–धीरे आलम्बन छुड़ाया जाता है, एक–एक करके छुड़ाया जाता है, एकदम एवं एकाएक नहीं छुड़ा लिया जाता। पहले कहा जाता है, यह देह में नहीं हूँ, इसलिए फिर देह में नहीं हूँ, इसलिए फिर देह की विधियाँ छोड़ दो, शीर्षासन करना, सि(ासन लगाना, सर्वासन करना इनसे कुछ न होगा। फिर धीरे–धीरे मैं मन की विधियाँ चली जायँ, तो फिर आत्मा की जो प्रति प्रतीतियाँ है जो मोक्ष, कैवल्य, निर्वाण– ये भी व्यर्थ है, इनको को छोड़ दो। ऐसे छोड़ते–छोड़ते, काटते–काटते बचेगा क्या? सिर्फ एक शून्य बच जायेगा, वहीं शून्य मोक्ष, वही शून्य निर्वाण है। यह नकारात्मक विधि है निर्वाण तक जाने की मगर विधि ही है। मैं तुमसे कह देना चाहता हूँ कि विधि ही है।

जे. कृष्णमूर्ति जी सामूहिक साधना प(तियों को व्यर्थ बताते हैं। उनका कहना है कि सत्य की खोज एक वैयक्तिक मामला है। तुम उसे अकेले ही पा सकते हो, किसी गुरु किसी मार्गदर्शक की कोई आवश्यकता नहीं हौ, न तुम्हे कहीं समर्पण करने की आवश्यकता है। प्रश्न यह कि जब व्यक्ति स्वयं सत्य तक पहुँच सकता है, बिना किसी विधि के बिना किसी साधना के, फिर कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति की क्या आवश्यकता है? इस प्रश्न के उत्तर

को स्पष्ट करते हुए ओशों, रजनीश जी का भी कहना है कि, कृष्णमूर्ति कहे चले जाते हैं कि तुम अकेले पा सकते हो। ऐसा इसलिए क्योंकि उनकी एक अप्रत्यक्ष विधि है, ने तुम्हें न जानने देंगे के कि वे मदद कर रहे हैं और ने तुमसे नहीं कहेंगे कि 'तुम समर्पण कर दी' यही कारण है कि कृष्णमूर्ति के समीप अहंकारियों की बड़ी भारी–भीड़ है, क्योंकि अंहकारी कभी भी किसी के सामने समर्पण नहीं करता। इसलिए कृष्णमूर्ति जी की बातें उन्हें बड़ी रूचिकर लगती, क्योंकि कुछ करना है, नहीं, न ध्यान न योग न समर्पण। कृष्णमूर्ति की पीछे चलते वाले, चिपक जाते हैं उनके शब्दों से सि(ान्तों की भाँति। इस प्रकार के कृष्णमूर्ति से कोई लाभ नहीं ले पाते, उल्टे हानि ही होती है, क्योंकि वे कृष्णमूर्ति को गलत तरीके से पकड़ते हैं। कृष्णमूर्ति ने काम किया पश्चिम में। वह स्वयं विकसित हुए गुरुओं के द्वारा। बहुत गहन ढंग से उन्हें मदद मिली गुरुओं से। गुरु जो शरीर के अन्दर थे और जो गुरु शरीर में नहीं थे, सभी ने विकसित होने में उनकी मदद की। लेकिन फिर उन्होंने कार्य किया पश्चिम में तथा पश्चिम समर्पण करने को करने को तैयार नहीं। इसलिए वे कृष्ण की भांति नहीं कर सकते 'आओ और मुझे समर्पण कर दो।'

शिक्षा के क्षेत्र में जे. कृष्णमूर्ति जी का योगदान

जे. कृष्णमूर्ति जी ने अनेक पुस्तकों की रचनाएँ की है जिसमें शिक्षा, संवाद, शिक्षा क्या है? सुखी वही जो कुछ नहीं, ज्ञात से मुक्ति, ध्यान, जीवन की पुस्तक, स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व एवं अनुशासन, विज्ञान एवं सृजनशीलता, यु(और शान्ति, मानवता का भविष्य, मृत्यु एवं उसके बाद गरुड़ की उड़ान संस्कृति का प्रश्न, शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य, प्रेम स्वयं से एक संलाप ध्यान में मन, जीवन की पुस्तक, स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व एवं अनुशासन, विज्ञान एवं सृजनशीलता, यु(और शान्ति, मानवता का भविष्य, ईश्वर क्या है? जीवन भाष्य,

जीविका का प्रश्न, प्रथम तथा अन्तिम मुक्ति, स्वतंत्रता उत्तरदायित्व एवं अनुशासन, जे. कृष्णमूर्ति नोट आदि प्रमुख है।

जे. कृष्णमूर्ति जी की प्रथम पुस्तक शिक्षा और जीवन का महत्व 1953 में हार्पर एवं रो के द्वारा अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में प्रकाशित हुई, जिसमें शिक्षा के प्रति जागरुकता एवं बालकों की शिक्षा पर विशेष महत्व दिया गया है। दूसरी पुस्तक प्रथम एवं अन्तिम मुक्ति जो 1954 के गोलन्ज द्वारा प्रकाशित की गयी है। इस पुस्तक में 21 चैपटर दिये गये है। जिसमें व्यक्ति एवं समाज, स्वयं ज्ञान, भय से मुक्ति, हमारे समस्याओं को कैसे समाधानल हो? तथा विभिन्न समस्याओं को लेकर प्रश्नोत्तर क्रम में वर्णित किया गया है। एक पुस्तक 1969 में प्रकाशित की गयी है जिसमें जागरुकता मृत्यु, भय, स्वतंत्रता, ईश्वर, प्रेम, अन्तरात्मा की दशा आदि विषयों पर लगभग 16 अध्याय में लिखा गया है। यह पुस्तक जे. कृष्णमूर्ति जी द्वारा 1963–64 में भारत एवं इंग्लैण्ड में दिये गये वक्तव्यों एवं भाषणों से सम्बन्धित है।

सन् 1971 में प्रकाशित अर्जेन्सी ऑफ चेंज एलेन नायडू द्वारा प्रकाशित की गई है, जिसमें जे. कृष्णमूर्ति जी के जीवन पर प्रकाशित है। अवेकिंग ऑफ इंटेलीजेंस सन् 1973 में प्रकाशित हुई जिसमें कृष्णमूर्ति जी के कार्यों को व्यापक रूप से वर्णन किया गया है।

जे. कृष्णमूर्ति जी का शिक्षा पर उनकी अवधारणा अच्छे ढंग से दो पुस्तकों में प्रकाशित है जो वीगनिगस ऑफ लर्निंग एवं लर्निंग कानस्टिस्ट ऑफ इनफार्मल एजुकेशन के नाम से प्रकाशित है। दूसरी पुस्तक में ब्रांकवुड विद्यालय के छात्रों एवं स्टाफ एवं जे. कृष्णमूर्ति के बीच हुए संवादों तथा वाद–विवादों को संकलित किया गया है। इसी प्रकार एक पुस्तक प्रकाशित की गई है। जिसमें)षि वैली एवं राजघाट ;वाराणसीद्ध के छात्रों एवं अध्यापकों से जे. कृष्णमूर्ति जी की बातचीत एवं संवादों को संकलित कर प्रकाशित किया गया है।

इसी प्रकार जे. कृष्णमूर्ति जी के विचारों तथा संवादों को 50 भाषाओं में अनुवाद करके 17 खण्डों में एक पुस्तक प्रकाशित की गई है जिसमें 800 संवादों तथा 2700 प्रश्नोत्तरों जो लगभग 20 देशों में पूछे गये थे को संकलित किया गया है। इसके प्रकाशन में लगभग सात वर्ष लगे।

जे. कृष्णमूर्ति जी पुस्तकों की रचना के साथ ही जगत में विभिन्न स्थानों पर विद्यालयों की स्थापना कर अपने विचारों को मूर्त रुप देने का सार्थक प्रयास यिका है ये विद्यालय शिक्षा जगत में अपनी पहचार उत्कृष्ट विद्यालय के रूप में प्रदर्शित कर रहे हैं विद्यालयों की स्थापन शहरों से दूर प्रकृति के सुरम्य वातावरण में किया गया है। ये विद्यालय आवासीय विद्यालय के रूप में आज भी प्रतिष्ठित है। इन विद्यालयों में अनेक ग्रोव स्कूल ओजावे, ब्रोक वुड पार्क एजुकेशन सेन्टर विश्व में उपलब्ध प्रतिष्ठित है। भारत में)षि वेली एजुकेशन सेन्टर दि वैली स्कूल, उत्तरकाशी एजुकेशन सेन्टर, साहियाद्रि कृष्णमूर्ति स्कूल स्टडी सेन्टर आदि की स्थापना कर शिक्षा के क्षेत्र में अपनी महानता कायम किये हुए है।

1. ओक ग्रोव स्कूल ओजाय

आ.ई. मार्क ली अपने आर्टिकिल 'ए गेस्ट आन अर्थ' 1975 में लिखा है कि जे. कृष्णमूर्ति जी ओक ग्रोव स्कूल की स्थापना 3 बालकों एवं 2 शिक्षकों से शुरु की। ये विद्यालय पूर्णतः आवासीय है। जिसमें बिना कुण्ठा के सृजनशील एवं अद्भूत सीखने का वातावरण में छात्रों को पढाया जाता है। यह विद्यालय हाईस्कूल स्तर का है। विद्यालय में लगभग 200 छात्रों को प्रवेश दिया जाता है ये बच्चे 5 से 18 वर्ष के है। पर्वत मालाओं की वादियों से घिरा हुआ है यह विद्यालय 150 एकड् में फैला हुआ है।

2. ब्रोकवुड पार्क एजुकेशन सेन्टर

जे. कृष्णमूर्ति जी द्वारा जनवरी 1970 में बालक एवं बालिकाओं का आवासीय विद्यालय स्थापित किया गया। यह विद्यालय विश्वस्तरीय स्वरूप में है जहाँ 20 विभिन्न देशों के

बालक/बालिकायें अध्ययन करती है। इन विद्यार्थियों की उम्र सीमा 14 से 25 वर्ष तक है। यहाँ शाकाहारी भोजन विद्यार्थियों को दिया जाता है। सीखने, सिखाने का आत्म वातावरण, मूलभूत तथ्यों, सम्प्रत्यों को समझाने तथा उस पर विचार करने का अवसर प्रदान किया जाता है। यहाँ, वृन्यूरिस्टिक टाइप ऑफ लर्निंग से शिक्षा प्रदान की जाती है। बिना किसी मनोवैज्ञानिक हस्तियों के ही छात्र, शिक्षक एवं सहयोगी कर्मचारी आपस में रहना, खेलना एवं नियमित दिनचर्या से जुड़े होते हैं।

3.)षि वैली एजुकेशन सेन्टर

यह विद्यालय आन्ध्र प्रदेश में स्थित है। यह आवासीय विद्यालय है जहाँ छात्र/छात्राएँ एक साथ पढ़ते हैं यह विद्यालय अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्रदान करता है। इस विद्यालय की स्थापना जे. कृष्णमूर्ति जी ने सन् 1931 में की थी। यहाँ लगभग 350 विद्यार्थी है जिनकी आयु 8 वर्ष से लेकर 17 वर्ष तक है। यहाँ पर योग्य शिक्षकों द्वारा छात्रों को सीखाने का कार्यक्रम होता है।

4. बाल आनन्द स्कूल

बम्बई के ह्रदय क्षेत्र में बाल आनन्द स्कूल की स्थापना जे. कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन द्वारा किया गया। यह विद्यालय 1975 में शुरु किया गया जहाँ पूर्व प्राथमिक स्तर शिक्षा का केन्द्र है। यहाँ डे केयर प्रोसिलिटी की सुविधा भी उपलब्ध है उन परिवारों के लिए यहाँ माता–पिता दोनों सेवा वर्ग से जुड़े हैं।

5. दि बंगलोर एजुकेशन सेन्टर

दि वैली स्कूल की स्थापना जुलाई सन् 1978 में की गई जो बंगलौर से 10 मील की दूरी पर स्थित है। यह स्थान प्राकृतिक हरीतिमाओं से आच्छादित जो चारों तरफ पहाड़ियों से घिरी है। यह विद्यालय 104 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। इस क्षेत्र को भारतीय संस्कृति में 'हरे जंगल' के रूप में जाना जाता है। यह विद्यालय सह शिक्षा का अंग्रेजी माध्यम वाला विद्यालय है जहाँ 5 से 16 वर्ष आयु वर्ग के छात्र/छात्राएँ अध्ययन करते हैं।

6. सहियाड़ी कृष्णमूर्ति स्कूल

10 सितम्बर 1995 में पश्चिमी भारत के महाराष्ट्र प्रदेश में इस विद्यालय की स्थापना की गयी। यह स्थान पूणे से 65 किलोमीटर दूर है सुनन्दा पटवर्धन नामक स्थान पर स्थित है। यह विद्यालय जे. कृष्णमूर्ति जी के बाद स्थापित किया गया है। यह बहुत शीघ्र उत्कृष्ट विद्यालयों की श्रेणी में आ चुका है। इसका नियंत्रण फाउण्डेशन इण्डिया द्वारा किया जाता है।

7. दि स्कूल के.एफ.आई.

यह विद्यालय मद्रास के मनोरम स्थल पर यहाँ वातावरीण एकदम शान्त है पर स्थापित किया गया है। यहाँ सह–शिक्षा का अंग्रेजी माध्यम वाला विद्यालय है। इस विद्यालय के सम्ब(में जी. गौतम ऐजूली ने स्थान की विवेचना करते हुए लिखा है कि किण्डर, मार्टिन से लेकर, कक्षा 12 तक के छात्र/छात्राएँ विद्यालय में बड़े खुशी से हैं विद्यालय रहते है। विद्यालय में छात्रों एव शिक्षक के मध्यम मित्रवत सम्बन्ध को पसन्द किया जाता है, वृहद् प्रकारों के अनुभवों से छात्रों को ओत–प्रोत किया जाता है। छात्र को कैम्पस तथा क्षेत्र भ्रमण तथा शैक्षिक भ्रमण की पूरी स्वतत्रता रहती है। प्रत्येक माह में आधा दिन अनुभवों से सहभागिता तथा अन्य बिन्दुओं पर प्रकाश डाला जाता है।

8. उत्तरकाशी एजुकेशन सेन्टर

यह विद्यालय भागीरथी के किनारे मध्य गढ़वाल विद्यालय में स्थित हैम्। भागीरथी के बाये किनारे पर भागीरथी वैली स्कूल तथा दायी तरफ उत्तरकाशी एजुकेशन सेन्टर स्थापित है। इसके निदेशक राजेश दलाल है। इसमें 36 छात्र/छात्राएँ अन्यत्र जगहों से लिये जाते हैं जबकि शेष छात्र/छात्राएँ अन्यत्र जगहों से लिये जाते हैं जबकि शोध छात्र गढ़वाल क्षेत्र से ही लिये जाते हैं।

9. राजघाट एजुकेशन सेन्टर

भारत में दूसरा आवासीय विद्यालय वाराणसी में राजघाट पर स्थापित किया गया है। जो वरुणा के तट पर यह सेन्टर लगभग 400 एकल में फैला हुआ है। यह विद्यालय कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया द्वारा संचालित होता है– बी. संजीवाराव लिखते हैं कि–बच्चों के विद्यालय का भवन 1933 में रविन्द्रनाथ टैगोर द्वारा भेजये गये इंजीनियर सुरेन्द्रनाथ द्वारा डिजाइन से गंगा को देखा जा सकता है। यहाँ का वातावरण पूर्णतः प्राकृतिक है। यहाँ पर राजघाट बसन्त स्कूल बसन्ता कॉलेज ऑफ गर्ल्स, बसन्ताश्रम रुरल सेन्टर तथा कृष्णमूर्ति रुरल सेन्टर एक ही कैम्पस में फैला हुआ है।

यह विद्यालय सह आवासीय विद्यालय के रूप में है। यहाँ अंग्रेजी माध्यम से विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है। यह विद्यालय सी.बी.एस.ई. बोर्ड द्वारा सम्बन्धित है। यहाँ लगभग 400 विद्यार्थियों का प्रवेश कक्षा–2 से लेकर कक्षा–8 में होता है। 60 विद्यार्थी डे स्कूल के रूप में प्रवेश पाते हैं। कक्षा में प्रत्येक छात्रों की संख्या भीड़–भाड़ वाली नहीं रहती है। छात्र एवं छात्राओं का अलग–अलग छात्रावास है एक छात्रावास अधीक्षक के अन्तर्गत 15 से 20 छात्र/छात्राएँ होती है। छात्र/छात्राओं के इस ढंग से प्रशिक्षित किया जाता है कि वे जीवन के चुनौतियों का भली–भाँति सामना कर सकें। यह छात्रों को बिना किसी पुरस्कार/दण्ड के ही अभिप्रेरित किया जाता है। यहाँ छात्रों के शरीर, बुि(एवं संवेदना का संतुलित विकास के दर्शन पर ही विकास किया जाता है।

जे. कृष्णमूर्ति द्वारा स्थापित फाउण्डेशन द्वारा विद्यालयों की देखरेख, स्टडी सेन्टर, उपलब्धियों तथा संवादों को जनमानस के सम्मुख लाने का प्रयास करता है। फाउण्डेशन के सदस्यों की पहली प्राथमिकता सत्य के बारे में खोज की है। जे. कृष्णमूर्ति की यह धारणा रही है कि पूरे भारत को एक सूत्र में पिरायो जाय, इसलिए वे दक्षिण में)षि बैल की स्थापना की तो उत्तरकाशी एजुकेशन सेन्टर, पश्चिम सहियाद्रि कृष्णमूर्ति स्कूल तो पूर्व

में राजघाट की स्थापना की। इससे यह प्रतीत होता है कि जे. कृष्णमूर्ति पूरे भारत को अपने विचारों से ओत–प्रोत करना उनकी मंशा थी।